मंगलाचरण

श्लोक :

*** मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहम्।
मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शंकरं वंदे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्रीरामभूपप्रियम्॥1॥
भावार्थ:-धर्म रूपी वृक्ष के मूल, विवेक रूपी समुद्र को आनंद देने वाले पूर्णचन्द्र, वैराग्य रूपी कमल के (विकसित करने वाले) सूर्य, पाप रूपी घोर अंधकार को निश्चय ही मिटाने वाले, तीनों तापों को हरने वाले, मोह रूपी बादलों के समूह को छिन्न-भिन्न करने की विधि (क्रिया) में आकाश से उत्पन्न पवन स्वरूप, ब्रह्माजी के वंशज (आत्मज) तथा कलंकनाशक, महाराज श्री रामचन्द्रजी के प्रिय श्री शंकरजी की मैं वंदना करता हूँ॥1॥
*** सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुंदरं पाणौ बाणशरासनंकटिलसत्तूणीरभारं वरम्।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे॥2॥
भावार्थ:-जिनका शरीर जलयुक्त मेघों के समान सुंदर (श्यामवर्ण) एवं आनंदघन है, जो सुंदर (वल्कल का) पीत वस्त्र धारण किए हैं, जिनके हाथों में बाण और धनुष हैं, कमर उत्तम तरकस के भार से सुशोभित है, कमल के समान विशाल नेत्र हैं और मस्तक पर जटाजूट धारण किए हैं, उन अत्यन्त शोभायमान श्री सीताजी और लक्ष्मणजी सहित मार्ग में चलते हुए आनंद देने वाले श्री रामचन्द्रजी को मैं भजता हूँ॥2॥

सोरठा :

*** उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति। पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति॥
भावार्थ:-हे पार्वती! श्री रामजी के गुण गूढ़ हैं, पण्डित और मुनि उन्हें समझकर वैराग्य प्राप्त करते हैं, परन्तु जो भगवान से विमुख हैं और जिनका धर्म मेंप्रेम नहीं है, वे महामूढ़ (उन्हें सुनकर) मोह को प्राप्त होते हैं।
***
चौपाई : पुर नर भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई॥ अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर नर मुनि भावन॥1॥
भावार्थ:-पुरवासियों के और भरतजी के अनुपम और सुंदर प्रेम का मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार गान किया। अब देवता, मनुष्य और मुनियों के मन को भाने वाले प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के वे अत्यन्त पवित्र चरित्र सुनो, जिन्हें वे वन में कर रहे हैं॥1॥ जयंत की कुटिलता और फल प्राप्ति
*** एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए॥ सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर॥2॥

भावार्थ:-एक बार सुंदर फूल चुनकर श्रीरामजी ने अपने हाथों से भाँति-भाँति के गहने बनाए और सुंदर स्फटिक शिला पर बैठे हुए प्रभु ने आदर के साथ वे गहने श्री सीताजी को पहनाए॥2॥

*** सुरपति सुत धरि बायस बेषा। सठ चाहत रघुपति बल देखा॥ जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंदमति पावन चाहा॥3॥

भावार्थ:-देवराज इन्द्र का मूर्ख पुत्र जयन्त कौए का रूप धरकर श्री रघुनाथजी का बल देखना चाहता है। जैसे महान मंदबुद्धि चींटी समुद्र का थाह पाना चाहती हो॥3॥

***सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा॥ चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना॥4॥

भावार्थ:-वह मूढ़, मंदबुद्धि कारण से (भगवान के बल की परीक्षा करने के लिए) बना हुआ कौआ सीताजी के चरणों में चोंच मारकर भागा। जब रक्त बह चला, तब श्री रघुनाथजी ने जाना और धनुष पर सींक (सरकंडे) का बाण संधान किया॥4॥ दोहा :

*** अति कृपाल रघुनायक सदा दीन पर नेह। ता सन आइ कीन्ह छलु मूरख अवगुन गेह॥1॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी, जो अत्यन्त ही कृपालु हैं और जिनका दीनों पर सदा प्रेम रहता है, उनसे भी उस अवगुणों के घर मूर्ख जयन्त ने आकर छल किया॥1॥

चौपाई :

***प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा॥ धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं। राम बिमुख राखा तेहि नाहीं॥1॥

भावार्थ:-मंत्र से प्रेरित होकर वह ब्रह्मबाण दौड़ा। कौआ भयभीत होकर भाग चला। वह अपना असली रूप धरकर पिता इन्द्र के पास गया, पर श्री रामजी का विरोधी जानकर इन्द्र ने उसको नहीं रखा॥1॥

***भा निरास उपजी मन त्रासा। जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा॥ ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका॥2॥

भावार्थ:-तब वह निराश हो गया, उसके मन में भय उत्पन्न हो गया, जैसे दुर्वासा ऋषि को चक्र से भय हुआ था। वह ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि समस्त लोकों में थका हुआ और भय-शोक से व्याकुल होकर भागता फिरा॥2॥

***काहूँ बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही ॥ मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना॥3॥

भावार्थ:-(पर रखना तो दूर रहा) किसी ने उसे बैठने तक के लिए नहीं कहा। श्री रामजी के द्रोही को कौन रख सकता है? (काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे गरुड़ ! सुनिए, उसके लिए माता मृत्यु के समान, पिता यमराज के समान और अमृत विष के समान हो जाता है॥3॥

***मित्र करइ सत रिपु कै करनी। ता कहँ बिबुधनदी बैतरनी॥ सब जगु ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता॥4॥

भावार्थ:-मित्र सैकड़ों शत्रुओं की सी करनी करने लगता है। देवनदी गंगाजी उसके लिए वैतरणी (यमपुरी की नदी) हो जाती है। हे भाई! सुनिए, जो श्री रघुनाथजी के विमुख होता है, समस्त जगत उनके लिए अग्नि से भी अधिक गरम (जलाने वाला) हो जाता है॥4॥

***नारद देखा बिकल जयंता। लगि दया कोमल चित संता॥ पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही॥5॥

भावार्थ:-नारदजी ने जयन्त को व्याकुल देखा तो उन्हें दया आ गई, क्योंकि संतों का चित्त बड़ा कोमल होता है। उन्होंने उसे (समझाकर) तुरंत श्री रामजी के पास भेज दिया। उसने (जाकर) पुकारकर कहा- हे शरणागत के हितकारी! मेरी रक्षा कीजिए॥5॥

***आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयाल रघुराई॥ अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मैं मतिमंद जानि नहीं पाई॥6॥

भावार्थ:-आतुर और भयभीत जयन्त ने जाकर श्री रामजी के चरण पकड़ लिए (और कहा-) हे दयालु रघुनाथजी! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। आपके अतुलित बल और आपकी अतुलित प्रभुता (सामर्थ्य) को मैं मन्दबुद्धि जान नहीं पाया था॥6॥

***निज कृत कर्म जनित फल पायउँ। अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउँ॥ सुनि कृपाल अति आरत बानी। एकनयन करि तजा भवानी॥7॥

भावार्थ:-अपने कर्म से उत्पन्न हुआ फल मैंने पा लिया। अब हे प्रभु! मेरी रक्षा कीजिए। मैं आपकी शरण तक कर आया हूँ। (शिवजी कहते हैं-) हे पार्वती! कृपालु श्री रघुनाथजी ने उसकी अत्यंत आर्त्त (दुःख भरी) वाणी सुनकर उसे एक आँख का काना करके छोड़ दिया॥7॥ सोरठा :

***कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित। प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम॥2॥

भावार्थ:-उसने मोहवश द्रोह किया था, इसलिए यद्यपि उसका वध ही उचित था, पर प्रभु ने कृपा करके उसे छोड़ दिया। श्री रामजी के समान कृपालु और कौन होगा?॥2॥

चौपाई :

***रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किए श्रुति सुधा समाना॥ बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीर सबहिं मोहि जाना॥1॥

भावार्थ:-चित्रकूट में बसकर श्री रघुनाथजी ने बहुत से चरित्र किए जो कानों को अमृत के समान (प्रिय) हैं। फिर (कुछ समय पश्चात) श्री रामजी ने मन में ऐसा अनुमान किया कि मुझे सब लोग जान गए हैं, इससे (यहाँ) बड़ी भीड़ हो जाएगी॥1॥